स्त्री और दलित अस्मिता का साहित्यिक प्रतिरोध: मनीषा कुलश्रेष्ठ और असीत राई के कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

नाम- मोहन महतो

शोधार्थी- लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी (पंजाब)

सारांश:

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में स्त्री और दलित अस्मिता के प्रश्नों ने साहित्य में एक नई वैचारिक और संवेदनात्मक ऊर्जा का संचार किया है। हिंदी की प्रख्यात कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ और नेपाली साहित्य के सशक्त स्वर असीत राई, अपने कथा-साहित्य में उन अनुभवों को स्थान देते हैं, जो लंबे समय तक समाज और साहित्य की मुख्यधारा से बहिष्कृत रहे। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियाँ स्त्री के भीतर और बाहर के संघर्षों को एक मार्मिक भाषा में चित्रित करती हैं—जहाँ देह, चेतना और आत्मसम्मान की जटिल परतें खुलती हैं। उनके पात्र सिर्फ पीड़िता नहीं, बल्कि प्रतिरोध की मूर्तियाँ हैं जो पितृसत्तात्मक ढाँचों को चुनौती देती हैं। वहीं असीत राई की कहानियाँ जाति व्यवस्था की अमानवीय संरचना के भीतर दबे दलित समुदाय की सामूहिक चेतना और सामाजिक जागरण को अभिव्यक्ति देती हैं। वे यथार्थवादी भाषा और लोकधर्मी शिल्प के माध्यम से दमन के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध की ज़मीन तैयार करते हैं। यह तुलनात्मक अध्ययन दोनों लेखकों की दृष्टि, भाषा, शिल्प और संवेदना में निहित समानताओं और भिन्नताओं को उद्घाटित करता है। जहाँ कुलश्रेष्ठ की कहानियाँ आत्मीयता और प्रतीकात्मकता में रची-बसी हैं, वहीं राई की कहानियाँ सीधे संवाद और यथार्थ के सहारे बदलाव की माँग करती हैं। दोनों लेखकों का कथा-साहित्य साहित्यिक प्रतिरोध की उस परंपरा का विस्तार करता है जो शोषित, वंचित और उपेक्षित अस्तित्वों को न केवल पहचान देता है, बल्कि सामाजिक पुनर्रचना की दिशा में एक सशक्त हस्तक्षेप भी करता है। यह शोध आलेख इस बात को रेखांकित करता है कि भाषा, भूगोल और सांस्कृतिक भिन्नताओं के बावजूद स्त्री और दलित अस्मिता के पक्ष में लिखा गया साहित्य एक साझा मानवीय संघर्ष का दस्तावेज़ बनता है, जो आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक हो उठा है।

मुख्य शब्द: स्त्री अस्मिता, दलित चेतना, प्रतिरोध साहित्य, मनीषा कुलश्रेष्ठ, असीत राई, तुलनात्मक अध्ययन, नेपाली कथा साहित्य, हिंदी कहानी, पितृसत्ता, जाति व्यवस्था आदि ।

भूमिका:

साहित्य मात्र सौंदर्य या कल्पना का विन्यास नहीं, यथार्थ का सजीव दस्तावेज़ होता है। जब समाज के हाशिये पर खड़े अस्तित्व—स्त्री और दलित—स्वर पाते हैं, तब साहित्य संवेदना से प्रतिरोध में रूपांतरित हो उठता है। भारतीय उपमहाद्वीप के हिंदी और नेपाली साहित्य में इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक एक परिवर्तनशील सांस्कृतिक मोड़ बनकर उभरा है, जहाँ सत्ता के विरुद्ध आत्मा की पुकार, विशेषकर स्त्री और दलित अस्मिता की चेतना, सघन रूप से व्यक्त होती है। मनीषा कुलश्रेष्ठ

हिंदी कथा-जगत की वह स्वर है, जिसमें स्त्री देह, आत्मा और समाज के बीच होने वाली अंतर्द्वंद्व की गूँज गहरे तक सुनाई देती है। उनकी कहानियाँ, केवल भावनाओं की नहीं, विचार और विद्रोह की भी वाहक हैं। वे स्त्री को निरीह प्राणी नहीं, संघर्षशील व्यक्ति के रूप में चित्रित करती हैं–एक ऐसी इकाई, जो न केवल भोगती है, बल्कि निर्णय भी लेती है, लड़ती है, गिरती है और पुनः उठती है। दूसरी ओर, नेपाली साहित्य में असीत राई एक सशक्त दलित स्वर हैं। उनका कथा-साहित्य नेपाली समाज की जातिगत जकड़नों को तोड़ते हुए दलित अनुभवों को केंद्र में लाता है। उनकी भाषा में उग्रता नहीं, किंतु एक ऐतिहासिक विवेक है–एक ऐसा विवेक जो जातीय अपमान को आत्मगौरव में रूपांतरित करने की सामर्थ्य रखता है। वे अपने पात्रों को केवल सहने के लिए नहीं, बल्कि प्रतिरोध के लिए भी खड़ा करते हैं। यह शोध, इन दोनों साहित्यकारों की रचनाओं के आलोक में, स्त्री और दलित अस्मिता की तलाश, रचना-शैली, भावभंगिमा, कथ्य और विमर्श की तुलनात्मक समझ प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि यह दो भाषाओं, दो सांस्कृतिक भूगोलों, और दो संघर्षशील वर्गों की पीड़ा, आकांक्षा और प्रतिरोध को एक साझा मंच पर उपस्थित करता है। यह भूमिका एक पृष्ठभूमि निर्मित करती है कि साहित्य न केवल जीवन का दर्पण है, बल्कि वह चुप्पियों के विरुद्ध उद्घोष भी है। और जब साहित्य में स्त्री और दलित बोलते हैं, तो वे केवल अपनी कहानी नहीं कहते–वे समाज के मौन को तोड़ते हैं, इतिहास को पुनर्लिखते हैं और भविष्य की इबारत रचते हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में स्त्री अस्मिता का प्रतिरोधः

साहित्य जब केवल मनोरंजन या यथार्थ का चित्रण नहीं, अपितु विमर्श का माध्यम बनता है, तब वह प्रतिरोध की राजनीति रचता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की किरदार ऐसी ही एक कहानी है, जो स्त्री की स्वायत्तता, पहचान और आत्मनियोजन के संघर्ष को शब्दबद्ध करती है। यह कहानी नारी अस्मिता के उस गूढ़ आत्म-संघर्ष की कथा है, जो पुरुष-प्रधान दृष्टिकोणों द्वारा आरोपित 'किरदारों' से मुक्ति की आकांक्षा रखती है। किरदार' की स्त्री-नायिका कोई पारंपरिक "देवदासी" नहीं, जो पुरुष दृष्टियों की कृपा पर जीवित हो। वह सवाल करती है, आक्रोश करती है, और सबसे बड़ी बात – वह स्वयं को पुनर्लिखने का प्रयास करती है। यह एक "सेल्फ राइटिंग" की प्रक्रिया है, जिसमें वह अपने अनुभवों की स्वामी बनती है: "हर बार मुझे किसी और की कहानी में एक किरदार बना दिया जाता है। मेरी अपनी कहानी क्यों नहीं होती?" (कुलश्रेष्ठ 11) यह वाक्य न केवल कथानक का सूत्र है, बल्कि स्त्री-विमर्श का घोषवाक्य भी बन जाता है। यह कथन agency की मांग करता है – अपनी कहानी खुद लिखने का अधिकार। उनके पात्र समाज द्वारा निर्धारित 'किरदारों' को तोड़ते हुए स्वयं की पहचान रचते हैं। यह पंक्ति स्त्री अस्मिता के उस यथार्थ को उद्घाटित करती है, जहाँ स्त्री को परंपरागत रूप से केवल एक 'चरित्र' — एक 'ऑब्जेक्ट' — के रूप में देखा गया है, न कि किसी 'सब्जेक्ट' यानी स्वायत्त, अनुभवी और निर्णयक्षम इकाई के रूप में। यह प्रश्न – "मेरी अपनी कहानी क्यों नहीं होती?" — स्त्री की अपनी कथा कहने की आकांक्षा है। यह स्त्री के 'स्व' की स्थापना का संघर्ष है, जो पितृसत्तात्मक समाज और साहित्य में बार-बार निषेधित होता रहा है। यह कथन साहित्यिक संरचना

में पितृसत्तात्मक लेखकीय वर्चस्व को चुनौती देता है। सदियों से पुरुष लेखक स्त्री पात्रों को अपनी दृष्टि से गढ़ते आए हैं – एक 'म्यूज़', एक 'प्रेमिका', एक 'माँ', या 'त्याग की प्रतिमूर्ति'। स्त्री को अपनी कहानी कहने की शक्ति नहीं दी गई, उसे सिर्फ किसी और की कथा का हिस्सा – एक "किरदार" – बनाया गया। यह पंक्ति लेखकीय और वैचारिक प्रतिनिधित्व के उस संघर्ष को उजागर करती है, जो स्त्री को 'लिखे जाने' से 'लिखने वाले' की स्थिति में लाने की माँग करता है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी "पानीगाथा" स्त्री अस्मिता के उस बहुपरतीय, बहुआयामी अनुभव को कथा-संरचना के माध्यम से उद्घाटित करती है, जहाँ एक दलित स्त्री का अनुभव न केवल वर्ग और जाति से संघर्षरत है, अपितु उसका स्त्रीत्व भी शोषण के बहुस्तरीय चक्रव्यूह में आबद्ध है। इस कहानी में स्त्री अस्मिता का प्रतिरोध केवल प्रत्यक्ष शोषण के विरुद्ध संघर्ष नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक विमर्शों में समाहित पितृसत्तात्मक सत्ता के प्रतिघात की एक उग्र और भाषाई चेतना भी है। "दुर्गी ने अपने काँपते हाथों से उस लोटे को उठाकर कुएँ में फेंक दिया – अब पानी नहीं दूँगी... अपने हाथों से पानी भरो। हम भी इंसान हैं।" (कुलश्रेष्ठ 33) यह कथन स्त्री की उस सामाजिक बेगानगी से मुक्ति की उद्घोषणा है जो उसकी पीढ़ियों से चली आ रही निम्नवर्गीय, अस्पृश्य और स्त्री श्रम की त्रैवर्णिक दासता में जकड़ी हुई थी। इस क्षण दुर्गी केवल पानी के लोटे को नहीं, बल्कि सदियों से थोपी गई चुप्पी, सहनशीलता और सेवाभाव की व्यवस्था को कुएँ में फेंक देती है। दुर्गी का चरित्र उस स्त्री का रूपक है जिसे सामाजिक श्रेणीकरण ने 'स्त्री' होते हुए भी 'मनुष्य' की श्रेणी से बाहर कर दिया है। वह सवर्ण व्यवस्था के लिए एक 'सरोवर' है – उपयोगी, परंतु सम्मानहीन। जब वह "हम भी इंसान हैं" कहती है, तब यह केवल आत्मसाक्षात्कार नहीं, एक सांस्कृतिक अस्वीकार भी है। कहानी में स्त्री की अस्मिता केवल पुरुष सत्ता से संघर्षरत नहीं, बल्कि उस समग्र सामाजिक ढांचे से टकरा रही है जिसने उसे दासी, अपवित्र और मौन की भूमिका में आरोपित किया। दुर्गी का यह विरोध किसी प्रगतिशील विमर्श के सन्निपात में विकसित प्रतिरोध है, जो परंपरा को अस्वीकार कर स्त्री स्वत्व की पुनर्रचना करता है। इस सन्दर्भ में डा. रमणिका गुप्ता *दलित स्त्री का कथा-संसार: दस्तावेज और विवेचना* में कहती है:"दलित स्त्री लेखन तब तक मौन था जब तक उसमें स्वयं स्त्रियाँ बोलने न लगीं। मनीषा की कहानियाँ, विशेषतः पानीगाथा, इस मौन को चीख में परिवर्तित करती हैं।" (87) पानीगाथा कहानी की नायिका दुर्गी बेल हुक्स की उस अवधारणा को चरितार्थ करती है, जिसमें "marginal woman" मुख्य धारा में आने के लिए पहले अपने अनुभवों को कथा में बदलती है। दुर्गी अपनी मौन पीड़ा को शब्दों में, और शब्दों को विद्रोह में बदल देती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी प्रेमकथा स्त्री अस्मिता के एक जटिल, सूक्ष्म और गहराई से प्रतिरोधी रूप को प्रस्तुत करती है, जहाँ प्रेम जैसे निजी अनुभव को सामाजिक, सांस्कृतिक और लैंगिक संरचनाओं के पारिप्रेक्ष्य में रूपायित किया गया है। यह कहानी एक स्त्री की दृष्टि से प्रेम को देखने, समझने और अपने ही अनुभव पर अधिकार जताने की आकांक्षा को प्रतिध्वनित करती है। यहाँ स्त्री केवल प्रेमिका नहीं है, वह एक जीवित सामाजिक सत्ता है, जो अपने अस्तित्व की स्वायत्तता के लिए जूझती है।"प्रेम

उसके लिए सिर्फ़ बाँहों में छुप जाना नहीं था, वह तो उस ताप की तलाश में थी जो उसके भीतर की बर्फ़ को पिघला दे।" (कुलश्रेष्ठ 65) यह पंक्ति प्रेम को पारंपरिक स्त्री-पुरुष संबंधों के दांपत्य अथवा दैहिक आग्रह से मुक्त कर एक अस्तित्वगत तापमान में बदल देती है, जहाँ स्त्री सहानुभूति नहीं, समानता की कामना करती है। प्रेमकथा की नायिका प्रेम को केवल पुरुष-संग नहीं, स्वयं के आत्मबोध और अंतरात्मिक संवाद के रूप में परिभाषित करती है। वह प्रेम को एक सहचरीय संवाद बनाना चाहती है न कि स्त्रीत्व की क्षतिपूर्ति। इस कहानी में कुलश्रेष्ठ स्त्री की देहगत सत्ता को अस्वीकार नहीं करतीं, परंतु उसे आत्मिक गरिमा के परिप्रेक्ष्य में पुनर्परिभाषित करती हैं। प्रेम यहाँ दैहिक अनुबंध नहीं बल्कि नैतिक सम्वेदना और आत्मीय जुड़ाव है। इस सन्दर्भ में डॉ. नीलिमा चौहान *स्त्री लेखन और आत्मकथात्मक स्वर* में कहती है: "मनीषा की कहानियाँ प्रेम और स्त्रीत्व को विमर्श की राजनीति से निकालकर उसे आत्मानुभूति और आत्म-प्रेरणा का आयाम देती हैं। प्रेमकथा में स्त्री 'प्रेम की वस्तु' नहीं, 'प्रेम की कर्ता' है।" (87) साइमन द बोउवा की स्त्रीवादी स्थापना कि "स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है", इस कहानी में विश्लेषित होती है। यहाँ प्रेम के माध्यम से स्त्री 'बनी हुई सत्ता' से 'बनाने वाली सत्ता' बनती है।

असीत राई की कहानियों में दलित अस्मिता का प्रतिरोध:

इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में नेपाली कथा साहित्य में सामाजिक यथार्थ के विविध रंगों को स्वर देने वाले कथाकारों में असीत राई एक सशक्त नाम हैं, जिनकी कहानियाँ न केवल शोषण और उत्पीड़न की अनुभूति कराती हैं, बल्कि दलित अस्मिता के स्वाभिमान और प्रतिरोध के स्वर को भी सशक्त रूप में सामने लाती हैं। उनकी कहानियाँ दलित जीवन की भीतरगामी पीड़ा, सामाजिक बहिष्करण, और सांस्कृतिक उपेक्षा के विरुद्ध साहित्यिक हस्तक्षेप का कार्य करती हैं। असीत राई के कथा-साहित्य में दलित संवेदना एक सजग, संवेदनशील और आत्ममंथनशील स्वरूप में उद्घाटित होती है। उनकी कहानियाँ केवल शोषण की करुण कथा नहीं सुनातीं, बल्कि दलित समुदाय की आंतरिक पीड़ा, मौन विद्रोह और सांस्कृतिक अस्मिता की जटिल परतों को खोलती हैं। "घोँघा र बस" यह कहानी प्रतीक और बिम्बों के माध्यम से उस धीमी लेकिन सघन दलित चेतना को स्वर देती है, जो अपने समय के शोरगुल में भी संघर्षरत आत्मा की तरह जीवित है। कहानी का 'घोंघा' एक ऐसा दलित प्रतीक बनकर उभरता है, जो न तो किसी तेज़ क्रांति का वाहक है, न ही सत्तात्मक विद्रोह का, बल्कि वह संघर्ष की मौन गाथा है, जिसे समाज पढ़ने को तैयार नहीं।

असीत राई की प्रतिष्ठित कहानी "घोँघा र बस" (घोंघा और बस) दलित जीवन की संवेदनाओं, सामाजिक उपेक्षा और मौन प्रतिरोध को अत्यंत कलात्मक ढंग से चित्रित करती है। इस कहानी के माध्यम से लेखक एक ऐसे पात्र और प्रतीक को सामने लाते हैं जो शोषण के विरुद्ध तेज़ शोर नहीं करता, बल्कि धीमे, परंतु सघन प्रतिरोध का वाहक बन जाता है। कहानी का नायक एक दलित युवा है, जो समाज की भीड़ से कटकर 'घोंघा' (snail) की तरह अपने खोल में बंद हो गया है। वह न तो 'बस' में चढ़ पाता है और न ही उस भीड़ का हिस्सा बन पाता है, जो जीवन के कथित विकास की दिशा में भाग रही है। "म बसीरहन्छु, घोँघाको खोलभित्र। त्यो खोल मेरो आत्मरक्षा हो,

मेरो अस्तित्वको एकमात्र प्रमाण।"(राई 42) ("मैं बैठा रहता हूँ, घोंघे के खोल के भीतर। वह खोल मेरी आत्मरक्षा है, मेरे अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण।") यह प्रतिरोध के उस मौन स्वरूप को दर्शाता है, जहाँ दलित अस्मिता किसी विद्रोही आक्रोश से नहीं, बल्कि आत्म-संरक्षण और सांस्कृतिक मौन से आकार लेती है। यहाँ 'घोंघा' एक अत्यंत अर्थपूर्ण प्रतीक है—जो न धीमा है, न डरपोक, बल्कि अपनी ही लय और गरिमा में चलने वाला एक चेतन प्राणी है। कहानी में "घोंघा" और "बस" दो विरोधी प्रतीक हैं: "घोंघा" = दलित अस्मिता, सांस्कृतिक मौन, आत्मरक्षा, हाशियाकरण | "बस" = आधुनिक व्यवस्था, जातिवादी मुख्यधारा, तेज़ विकास की अंधी दौड़ | असीत राई यहां दलित पात्र को किसी 'क्रांतिकारी नायक' की तरह नहीं गढ़ते, बल्कि एक भीतर से टूटा, संवेदनशील और निरीह पात्र पेश करते हैं जो "मौन" के माध्यम से विरोध करता है। घोंघा अपनी गति में धीमा है लेकिन कभी पीछे नहीं हटता—यह दलित अस्मिता की स्थायित्वपूर्ण शक्ति का प्रतीक बन जाता है। यह कहानी 'डिकन्स्ट्रक्टिव' दृष्टिकोण से सामाजिक संरचना को चुनौती देती है। घोंघा में निहित अस्तित्ववादी संघर्ष इस बात को रेखांकित करता है कि दलित केवल सहानुभूति का पात्र नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना और प्रतिरोध का वाहक भी है। इस सन्दर्भ में डा. कृष्ण धरावासी दलित चेतना र प्रतीकात्मक कथा में कहते है: "असीत राईका पात्रहरू दया होइन, चेतनाको पात्र हुन्। 'घौँघा र बस' मा दलित अस्मिताको मौन, तर दार्शनिक विद्रोह चित्रित छ।"(76) ("असीत राई के पात्र दया के नहीं, चेतना के पात्र हैं। 'घोंघा र बस' में दलित अस्मिता का मौन, परंतु दार्शनिक विद्रोह चित्रित है।") "घौँघा र बस" केवल एक कहानी नहीं, एक प्रतीकात्मक आंदोलन है—जहाँ दलित अस्मिता शोर नहीं मचाती, परंतु अपने अस्तित्व की पहचान के लिए अडिग रहती है। यह कहानी उस सामाजिक संरचना पर प्रश्नचिह्न लगाती है जो दलितों को प्रगति की बस से उतार कर 'घोंघा' बना देना चाहती है। लेकिन यही घोंघा, अपने खोल में बैठा हुआ, पूरे समाज को आईना दिखा देता है।

"छेउको मान्छे" नेपाली समाज की उस कठोर यथार्थ को उजागर करती है जिसमें दलित व्यक्ति, सामाजिक व्यवस्था के हाशिए पर जीने के लिए विवश होता है। यह कहानी एक दलित युवक के अनुभवों के माध्यम से जातिवादी संरचना, असमानता और आत्म-अस्तित्व के संघर्ष को मुखर करती है। कहानी का नायक 'छेउको मान्छे' अर्थात् हाशिए का व्यक्ति है – एक ऐसा किरदार जो हमेशा केंद्र से परे, निर्णयों और अवसरों के बाहर रखा जाता है। यह पात्र प्रतीक बन जाता है उस समूचे दलित समाज का, जिसे ना केवल सामाजिक बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी दरकिनार किया गया है। असीत राई इस पात्र को केवल एक सामाजिक प्राणी नहीं, बल्कि एक 'चेतस अस्मिता' के रूप में प्रस्तुत करते हैं – जो न केवल सहता है, बल्कि अपने भीतर प्रतिरोध की चिंगारी भी सँजोए हुए है। "हामीजस्ता मान्छेहरूलाई कोही सुन्दैन, हाम्रो आवाज त केवल हावामा हराउँछ।"(राई 43) ("हम जैसे लोगों की कोई नहीं सुनता, हमारी आवाज तो हवा में खो जाती है।") यह वाक्य दलित अनुभव की मौन पीड़ा को उकेरता है। यह उस गहरे अंतर्विरोध को दर्शाता है जहाँ व्यक्ति अपने अधिकारों की बात करता है, परंतु सत्ता और समाज के कानों तक वह आवाज नहीं पहुँचती। यह एक दलित आत्म-अस्वीकृति से दलित आत्म-साक्षात्कार की यात्रा का संकेतक बन जाता है। इस सन्दर्भ में साहित्य समीक्षक कृष्ण धरावासी *दलित चेतना और असीत राई की कहानियाँ* में लिखते

हैं: "असीत राईका पात्रहरू मौन भएर पनि ठूलो प्रतिरोध गर्छन्। उनीहरूले मौनमा यथार्थ बोल्छन्।" (65) ("असीत राई के पात्र मौन रहकर भी बड़ा प्रतिरोध करते हैं। वे मौन में ही यथार्थ बोलते हैं।") यह आलोचनात्मक मत दर्शाता है कि असीत राई की लेखनी मुखर नहीं, परंतु भीतर तक जाकर पाठक के संवेदन को आंदोलित करती है। उनके पात्रों की चुप्पी भी अपने भीतर दलित अस्मिता की प्रचंड चेतना को संजोए होती है। "छेउको मान्छे" केवल एक दलित की कहानी नहीं है, यह पूरे उस समुदाय की प्रतिध्वनि है जो आज भी अपनी जगह तलाश रहा है। असीत राई की यह कथा हाशिए के अनुभवों को प्रतिरोधात्मक साहित्य के केंद्र में लाकर, नेपाली साहित्य को सामाजिक न्याय की नई दृष्टि से समृद्ध करती है।

"सड़क छेउको घर" (सड़क किनारे का घर) एक ऐसी कथा है जो जातिगत भेदभाव और सामाजिक बहिष्करण के विरुद्ध खड़े होने वाले व्यक्ति की गाथा है। यह कहानी केवल एक स्थानिक यथार्थ नहीं, बल्कि पूरे नेपाली समाज के उस वर्गीय, जातीय और सांस्कृतिक विभाजन को उजागर करती है जहाँ दलित वर्ग एक अदृश्य किनारे पर जी रहा होता है। इस कहानी का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो शहर की मुख्यधारा से ठीक बगल में – सड़क किनारे – रहता है। यह "किनारे" का प्रतीक केवल भूगोलिक नहीं, बल्कि सामाजिक बहिष्करण और जातिगत हाशियाकरण का भी प्रतीक है। असीत राई यहाँ "घर" को केवल ईंट-पत्थर की संरचना नहीं, बल्कि अस्मिता और आत्मगौरव का प्रतीक बनाते हैं। यह घर दलित नायक की दुनिया है – जिसे समाज ने ना कभी केंद्र में रखा, ना ही मान्यता दी। "हामी जहाँ बस्छौं, त्यही ठाउँमा धुलो, फोहोर, गन्ध हुन्छ, अनि सोच्छन् – हामी त्यस्तै छौं।" (राई 81) ("जहाँ हम रहते हैं, वहीं धूल, गंदगी और बदबू होती है, और फिर लोग सोचते हैं – हम वैसे ही हैं।") यह वाक्य स्थान, जाति और पहचान के त्रिकोणीय संबंध को सामने लाता है। समाज केवल भौगोलिक दूरी से नहीं, मानसिक दूरी से भी दलितों को अलग करता है। राई यह दिखाते हैं कि किस प्रकार भौगोलिक बहिष्कार धीरे-धीरे संवेदनात्मक और मानवीय बहिष्कार में बदल जाता है। यह न केवल वर्ण-व्यवस्था के भौतिक स्वरूप को, बल्कि मानसिक संरचना को भी उजागर करता है, जो दलितों को गंदगी, दुर्गंध और अपवित्रता से जोड़ता है।इस सन्दर्भ में साहित्यकार नयनराज पाण्डे *असीत राईको कथा र दलित चेतना* में लिखते हैं: "असीत राईका कथा पात्रहरू समाजको मूल सन्दर्भमा छैनन्, तर उनीहरू आफैं एउटा यथार्थ र प्रतिरोधका प्रतिनिधि छन्।" (35) ("असीत राई के पात्र सामाजिक केंद्र में नहीं हैं, परंतु वे स्वयं यथार्थ और प्रतिरोध के प्रतिनिधि हैं।") इस कथन के अनुसार, राई की कथा-भूमियाँ समाज के 'केंद्र' में नहीं, बल्कि 'किनारे' पर होती हैं – परंतु वहीं से प्रतिरोध की शक्ति जन्म लेती है। "सड़क छेउको घर" का नायक इसी प्रकार के 'हाशिये के प्रतिरोधी' पात्र का प्रतिनिधित्व करता है। "सड़क छेउको घर" असीत राई की सबसे संवेदनशील और सामाजिक रूप से मुखर कहानियों में से एक है। यह कथा स्थान-चिह्नों के माध्यम से समाज में व्याप्त जातिगत शोषण, स्थानिक अलगाव, और दलित अस्मिता के संघर्ष को उजागर करती है। राई की भाषा, प्रतीकों और पात्रों के माध्यम से यह कहानी एक अंतर्निहित प्रतिरोध का घोषणापत्र बन जाती है।

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में हिंदी और नेपाली कथा साहित्य ने समाज के हाशिये पर स्थित अस्मिताओं की ओर साहित्यिक दृष्टि डाली है। मनीषा कुलश्रेष्ठ और असीत राई, ये दो समकालीन रचनाकार, दो भिन्न भाषाई-सांस्कृतिक भूगोल से होकर भी अस्मिता विमर्श की साझा जमीन पर खड़े दिखाई देते हैं। जहाँ मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियाँ स्त्री की आत्मिक और सामाजिक मुक्ति की गाथा कहती हैं, वहीं असीत राई का कथा-संसार दलित अस्मिता के दमन और प्रतिरोध की सघन पड़ताल करता है। मनीषा की 'पानीगाथा', 'प्रेमकथा' या 'किरदार' जैसी कहानियाँ स्त्री को केवल एक जैविक सत्ता न मानते हुए उसे विचार और संवेदना की स्वायत्त सत्ता के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनकी पात्राएँ भीतर से बिखरी हुई होते हुए भी बाहर से जूझने का साहस रखती हैं। जैसे 'पानीगाथा' की नायिका कहती है – "हर बार मुझे किसी और की कहानी में एक किरदार बना दिया जाता है, मेरी अपनी कहानी क्यों नहीं होती?" यह स्त्री अस्मिता की स्वाधीन आवाज़ है, जो पितृसत्तात्मक आख्यानों को अस्वीकार करती है। इसके बरक्स असीत राई की 'सड़क छेउको घर', 'गोंगार बस', 'शे'व को मान्छे' जैसी कहानियाँ जातीय बहिष्कार, उपेक्षा और सामाजिक संरचनात्मक हिंसा के विरुद्ध साहित्यिक हस्तक्षेप हैं। 'गोंगार बस' में जातिगत पहचान एक बुरे स्वप्न की तरह पात्र का पीछा करती है, और समाज की समरसता केवल सतही साबित होती है। असीत राई की भाषा जहाँ आंचलिकता और जनभाषा का स्वर लिए हुए है, वहीं मनीषा की भाषा प्रतीकों, बिंबों और आत्म-विश्लेषणात्मक प्रवाह से परिपूर्ण है। दोनों लेखकों में प्रतिरोध की प्रकृति भिन्न है – मनीषा की नायिकाएँ निजी, दैहिक और अस्तित्वगत संघर्ष करती हैं, जबकि राई के पात्र सामूहिक और जातीय परिप्रेक्ष्य से प्रतिरोध का निर्माण करते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि दोनों का साहित्य उस सामाजिक-राजनीतिक युगबोध से जुड़ा है जिसमें वंचितों की आवाज़ें साहित्य में प्रमुखता से उभर रही हैं। यदि मनीषा का लेखन स्त्री देह के राजनीतिकीकरण और उसकी मुक्ति को स्वर देता है, तो असीत राई की कहानियाँ दलित अनुभवों की प्रस्तुति में संवेदनात्मक ईमानदारी को प्रतिष्ठा देती हैं। दोनों लेखकों की कहानियों में पीड़ा केवल अनुभव नहीं, अपितु एक वैचारिक प्रतिरोध है। इस प्रतिरोध का मूल उद्देश्य 'मनुष्य होने के अधिकार' की पुनर्स्थापना है – नारी के लिए सामाजिक गरिमा और दलित के लिए मानवीय प्रतिष्ठा। आलोचकों ने भी इस दृष्टिकोण को सराहा है – रमनिका गुप्ता के अनुसार, "दलित और स्त्री लेखन में आत्माभिव्यक्ति ही नहीं, समाज के खिलाफ एक सर्जनात्मक हस्तक्षेप होता है।" अतः यह कहा जा सकता है कि मनीषा कुलश्रेष्ठ और असीत राई दोनों ही अपने साहित्य के माध्यम से उस मौन को आवाज़ देते हैं, जिसे मुख्यधारा ने अनसुना किया। उनके यहाँ अस्मिता न केवल आत्म-प्रश्न है, बल्कि एक सामाजिक कार्यनीति भी है। यही उनके साहित्य को समकालीन विमर्श के केंद्र में स्थापित करता है।

निष्कर्ष :

स्त्री और दलित अस्मिता के संघर्ष की अभिव्यक्ति हिंदी की मनीषा कुलश्रेष्ठ और नेपाली के असीत राई के कथा-साहित्य में एक प्रतिरोधात्मक विमर्श के रूप में उभरती है। दोनों लेखकों की रचनाएँ सत्ता-व्यवस्थाओं, पितृसत्तात्मक मानसिकता और जातिवादी सामाजिक संरचनाओं के विरुद्ध एक वैचारिक

हस्तक्षेप हैं, जहाँ कथा-संरचना, भाषा-शैली और प्रतीकों के माध्यम से विमर्शों का सृजन होता है। मनीषा की कहानियों में स्त्री देह और चेतना के दोहरे शोषण के विरुद्ध जो प्रतिरोध है, वह केवल सामाजिक सुधार की माँग नहीं बल्कि स्वायत्तता की पुनर्स्थापना है–"हर बार मुझे किसी और की कहानी में किरदार बना दिया जाता है"–यह वाक्य नायिका की आत्मस्वीकृति का उद्घोष है। दूसरी ओर, असीत राई की कहानियाँ 'गोंगार बस', 'सड़क चौक को घर' और 'शव' जैसी रचनाओं में दलित जीवन के यथार्थ को केंद्र में रखकर वर्ण व्यवस्था की अमानवीयता को उजागर करती हैं। इन दोनों लेखकों की कथात्मक संवेदना में 'प्रतिरोध' केवल भावनात्मक उबाल नहीं है, वह अनुभवों की गहराई से उपजा विवेक है। मनीषा की नायिकाएं जहाँ स्त्रीत्व की पुनर्रचना करती हैं, वहीं असीत राई के पात्र दलित चेतना को भाष्य प्रदान करते हैं। ये रचनाएं अस्मिता के स्वरूप को यथार्थ, स्मृति और आकांक्षा के त्रिकोण में स्थापित करती हैं। आलोचक रमनिका गुप्ता के अनुसार, "स्त्री और दलित साहित्य केवल वर्णन नहीं, चेतना की क्रांतिकारी उथल-पुथल है।" इसी प्रकार, नेपाली आलोचक भोजराज खरेल लिखते हैं कि, "असीत राई की कहानियाँ दलित जीवन की चुप्पियों में व्याप्त चीख को भाषा देती हैं।" इस तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं की कहानियाँ न केवल अपने समाज की विकृतियों को प्रश्नांकित करती हैं, बल्कि वे पाठकों में संवेदना और विवेक का जागरण भी करती हैं। दोनों लेखकों की भाषा में अनुभवजन्य तीव्रता है, प्रतीकों में विद्रोह की छाया है, और शैली में विचारधारात्मक स्पष्टता। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि मनीषा कुलश्रेष्ठ और असीत राई का कथा-साहित्य स्त्री और दलित अस्मिता के साहित्यिक प्रतिरोध का ऐसा सशक्त माध्यम है, जो सामाजिक चेतना, आलोचनात्मक विवेक और साहित्यिक गरिमा–तीनों को एक साथ समाहित करता है।

संदर्भ सूची-

आधार ग्रन्थ (हिंदी एवं नेपाली) :

कुलश्रेष्ठ, मनीषा. किरदार. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2018.

---. "प्रेमकथा।" किरदार, राजकमल प्रकाशन, 2018 .

---. पानीगाथा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2020.

---. प्रेमकथा. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2016.

राई, असीत. गोंगार बस. काठमाडौं: संग्रिला बुक्स, 2016.

---. आमा को आवाज़। काठमांडू: फीनिक्स बुक्स, 2016।

---. सड़क चोकको घर. काठमाडौं: फाइनप्रिन्ट, 2019.

---. शव. काठमाडौं: रत्ना पुस्तक भण्डार, 2020.

सहायक ग्रंथ (हिंदी एवं नेपाली) :

गुप्ता, रमनिका. दलित स्त्री का अंतरसंघर्ष. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2010

द्विवेदी, विश्वनाथ. हिंदी दलित साहित्य: विमर्श और यथार्थ. वाराणसी: साहित्य भंडार, 2015.

मोहन, कृष्ण. स्त्री-विमर्श की रूपरेखा. दिल्ली: राजपाल एंड संस, 2012.

ओझा, रामजीत. दलित विमर्श और हिंदी कहानी. दिल्ली: प्रकाशन विभाग, 2013.

थुलुङ, उदय. नेपाली दलित कथा साहित्यको सामाजिक संवेदना. पोखरा: युगीन प्रकाशन, 2018.

खरेल, भोजराज. नेपाली साहित्यमा दलित विमर्श. काठमाडौं: सञ्जीवनी पब्लिकेशन, 2017.

राई, हेमनदास. दलित कथा र समाज. विराटनगर: पेनप्वाइंट पब्लिशर्स, 2020.

सामान्य/विमर्श स्रोत:

रंजन, अजय. तुलनात्मक साहित्य: सिद्धांत और व्यवहार. दिल्ली: साहित्य भवन, 2014.

कुशवाहा, ऋषिकेश. हिंदी और नेपाली साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन. गोरखपुर: भारतीय भाषा परिषद, 2021.

धरावासी, कृष्ण। "दलित चेतना और असीत राई की कहानियाँ।" साहित्य सन्देश, खं. 5, अंक 2, 2019.

लुईटेल, नवराज। "दलित विमर्श और नेपाली कथा साहित्य।" दलित अध्ययन त्रैमासिक, खंड 5, अंक 2, 2018.

सहायक पत्र पत्रिकाएं:

आलोचना. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, त्रैमासिक.

नया ज्ञानोदय. भारतीय ज्ञानपीठ, मासिक.

पूर्वग्रह. साहित्य अकादमी (भोपाल केंद्र), द्वैमासिक.

प्रागध्वनि. जबलपुर विश्वविद्यालय (हिंदी विभाग), अर्धवार्षिक.

समकालीन भारतीय साहित्य. भारतीय साहित्य परिषद, त्रैमासिक.

साक्षात्कार. साहित्य अकादमी (दिल्ली), त्रैमासिक.

हंस. हंस प्रकाशन समूह, मासिक.

रूपरेखा, नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान, त्रैमासिक पत्रिका, काठमांडू, नेपाल।

मदनमाला, मदन पुरस्कार गुठी, त्रैमासिक पत्रिका, काठमांडू, नेपाल।

शब्द संचार, नेपाली लेखक संघ, मासिक पत्रिका, काठमांडू, नेपाल।

समकालीन साहित्य, समकालीन साहित्य समाज, मासिक पत्रिका, काठमांडू, नेपाल।

इंटरनेट सहायक सामग्री-

www.apnimaati.com

https://www.apnimaati.com/2021/12/blog-post_33.html

www.sdsuv.co.in

https://sdsuv.co.in/art_journal/30_03/71_74.pdf

www.irgu.unigoa.ac.in

नाम- मोहन महतो

पता- 2/6 बाघा जतिन कॉलोनी, पोस्ट- प्रधान नगर, जिला- दार्जिलिंग, पिन- 734003, राज्य- पश्चिम बंगाल.

शोधार्थी- लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी (पंजाब)